।।श्री कृष्णः शरणं मम।।

ओ मैय्या

'ओ मैय्या! 'मैय्या री!! ओ मैय्या..... मम्मी!!! कहां हो आप?'

मैय्या आई। चेहरे पर वही मधुर मुस्कान जिस पर किसी भी प्रकार के आवेग का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जाने क्या था उस मुसकान में। मेरी उत्तेजना, मेरी उद्विग्नता गल गल कर बहने लगी।

मैंने अपने को संयत किया- 'देख लो मम्मी तुम्हारे कन्हैय्या की करतूत! देखो अखबार! गंगा की बाढ में हजारों घर उजड़ गए!! सैंकड़ों लोग मारे गए!! तुम्हारे कन्हैय्या को कुछ काम धंधा नहीं क्या? क्यों दुख देते हैं इतना? क्या बिगाड़ा था उन हजारों हजारों मवेशियों ने किसी का, जो बे वजह काल के गाल में समा गए? क्या बुरा किया था उन किसानों ने किसी का जिसके कारण उन्हें यह अवस्था देखनी पड़ी? किस बात की सजा दी है उनको तुम्हारे कन्हैय्या ने?

मां- 'बेटी इसके लिए वे तो जिम्मेवार नहीं। उनका क्या दोष है? वे तो कुछ करते नहीं।'

मैं- 'वाह मम्मी वाह! कहती हो कि वे तो कुछ भी नहीं करते! कहीं बाढ कहीं सूखा, कहीं तूफान..... इनके लिए वे जिम्मेवार नहीं तो कौन है? क्या इसमें भी हमारा ही दोष है? अर्जुन को कहा कि मैं तुम्हारा पितामह, माता, धाता, गुरु, सखा, सुहृद सब कुछ हूं और इस प्रकार कहर बरपा कर चैन की वंशी बजाते रहते हैं! यही उनका प्रेम है हमारे प्रति!! यही न्याय है उनका!! ऐसे क्रूर माता पिता तो धरती पर कहीं नहीं सुने मैंने।' उफ् चीखते चीखते मैं थक चुकी थी।

'बोल चुकी?' वही मंद स्मित।

मैं- 'मुझे जवाब दो मम्मी! मुझे तुम्हारा उत्तर चाहिए। कन्हैय्या की ओर से तुम्हें ही उत्तर देना है आज।'

मां- 'इसका उत्तर तो छः हजार साल पहले ही दिया जा चुका है। रणभूमि में अर्जुन तुमसे कम उत्तेजित नहीं था जब उसने कहा- जनार्दन! मेरी बुद्धि को उलझाओ मत। मुझे स्पष्ट उत्तर दो।'

मुझे कुछ शांति मिली- 'क्या कहा था उन्होंने?'

मां- 'उन्होंने यज्ञ की बात बताई थी। **यज्ञार्थात्कर्मणोन्यत्र लोकोयं कर्मबन्धनः .....**

मैंने बीच में ही टोक दिया- 'वाह रे तुम्हारे कृष्ण कन्हैय्या! जवाब नहीं। युद्ध भूमि में खड़े योद्धा को कह दिया यज्ञ करो। यानि तीर धनुष छोड़ कर वह समिधा बटोरने निकल पड़े जंगल में। तालियां बजाऊं तालियां उनकी इस नेक सलाह पर। यही सलाह आज भी होगी उनकी उन गरीब किसानों के लिए! जिनके बच्चों को दूध नहीं मिलता वे अग्नि में घी की आहुति दें, स्वाहा, स्वाहा, करते रहें?'

मां- 'देखो, क्रोध और उत्तेजना मनुष्य की सारी कार्य कुशलता हर लेती है। उत्तेजना में तुम मेरी बात को समझने जैसा साधारण कार्य भी भली भांति नहीं कर पाओगी। सबसे पहली आवश्यकता तो है मन को सम करने की, शांत करने की। समत्व से ही कुशलता आती है। देखो, मेरी ओर देखो एक बार। मुझ पर विश्वास करो। मैं जानती हूं उनके हृदय की एक एक बात। सचमुच वे तुम्हारे परम सुहृद हैं। श्रद्धा रखो उन पर। श्रद्धा के बिना मेरी सारी बातें अटपटी लगेगी तुम्हें। आओ, मेरे पास आओ। तुम्हारे सभी प्रश्नों का उत्तर है मेरे पास। मैं सारी बातें निश्चित रूप से समझा दूंगी। तुम्हारा सारा भ्रम दूर हो जाएगा।'

अब क्या था। ऐसी पुकार सुनकर भला कोई पूर्वस्थिति में रह सकता है। मैय्या का मधुर स्पर्श..... सचमुच उनकी गोद सारे संशयों को पूर्ण रूप से छिन्न कर सकती है। उनके वचन मानों अमृत घोल रहे थे। मेरा मन बिलकुल शांत हो गया था और मैय्या की बातें सुनने को तैयार था।

मां- 'देखो, यज्ञ का अर्थ अग्नि प्रज्वलित कर स्वाहा स्वाहा करना नहीं। उसे तो तुम अग्निहोत्र या हवन कह सकती हो। सोचो तो भला, पार्थसारथि भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को ऐसी सलाह उस वक्त कैसे देते जब युद्ध के नगाड़े बज रहे थे। उन्हें तो उससे युद्ध करवाना था। वे तो उसे ऐसी बात बताने जा रहे थे कि युद्ध भी यज्ञ कर्म बन जाए।'

मैं- 'क्या सचमुच? पर मम्मी मैं कुछ समझ नहीं पा रही।'

मां- 'देखो, प्रत्येक बात को देश-काल-परिस्थिति के संदर्भ में समझना चाहिए। अच्छा बताओ, जिसे तुम यज्ञ समझती हो, उसमें क्या किया जाता था?'

मैं- 'अरे, वह तो बहुत बड़ा आयोजन होता था। राजा महाराजा ही करते थे उसे। हां उसमें योगदान सबका होता था। सभी मिल जुलकर कार्य करते थे। किसी को यह नहीं लगता था कि यह राजा का यज्ञ है, वह अपने लाभ के लिए कर रहा है। मैं तो केवल उसका अधीनस्थ हूं इसलिए मुझे यह सब करना पड़ रहा है। सब अपना यज्ञ मानते थे।'

मां- 'और यज्ञ किया कैसे जाता था?'

मैं- 'देखो, मैंने स्वयं तो कभी यज्ञ किया नहीं कि तुम्हारे बारीक बारीक प्रश्नों का उत्तर दे सकूं। हां इतना मालूम है कि सब देवताओं के नाम से आहुतियां दी जाती थी और यज्ञ में सबका भाग रखा जाता था।'

मां- 'बहुत अच्छे! यही बात तो मैं केवल सुनना चाहती थी तुम्हारे मुख से। तुम एकदम ठीक बढ रही हो। सब जरा यह भी बता दो कि यज्ञ के बाद प्रसाद वितरण कैसे होता था?'

मैं- 'हां! यह तो मैंने कथाओं में पढा है। युधिष्ठिर के यज्ञ में, भगवान कृष्ण ने ही तो अतिथियों के चरण धोए थे, जूठी पत्तलें उठाई थी। भीम ने स्वयं भोजन की जिम्मेदारी ली थी। सबको संतुष्ट करने के बाद ही यज्ञकर्ता युधिष्ठिर भोजन करने बैठे थे। तब वह नेवला.....

मां- 'बस बस। इतने विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं। इतना काफी है। अब तुम यज्ञ के संदर्भ में मुख्य मुख्य बिंदु नोट करो।

1. यज्ञ में सबके हृदय में परस्पर सहयोग की भावना होती है।

2. सब अपने अपने स्वार्थ और अहंकार को त्याग कर अपनी सामर्थ्य के अनुसार योगदान देते हैं।

3. जिन शक्तियों (देवताओं) से हमारा पोषण होता है, हमें लाभ मिलता है उनके लिए प्रतिदान की भावना से कर्म किए जाते हैं।

4. यज्ञकर्ता अपने व्यक्तिगत हित के लिए कुछ नहीं करता। सबके हित की भावना रखता है। सबको संतुष्ट करने के बाद ही स्वयं कुछ ग्रहण करता है।'

मैं- 'मां आप टीचर बहुत अच्छी हो।'

मां- 'छोड़ो बेकार की बातें। तुम ध्यान दे कर मेरी बात सुनो। जो चार बिंदु अभी मैंने बताए उन्हें ध्यान में रख कर जो भी कार्य किया जाए वह यज्ञ हो जाता है।'

मैं- 'मां, थोडा समझा कर बताओ न।'

मां- 'लो तुम्हें आज के युग के दृष्टान्त से समझाती हूं। आजकल जो को-ओपरेटिव सोसाइटी होती है न, जरा विचार करके बताओ कि उन में क्या होता है।'

मैं- 'को-ओपरेटिव सोसाइटी किसी समुदाय विशेष में सबके हित को ध्यान में रखकर बनाई जाती है। जैसे बुनकरों की को-ओपरेटिव है अपने इलाके में। कुछ लोगों ने बुनकरों को समझाया और सबने मिलकर यह सोसाइटी बनाई। इससे सभी बुनकरों को लाभ होता है। वे सब सोसाइटी के मार्फत धागा खरीदते हैं और बुना हुआ कपडा भी सोसाइटी के मार्फत ही बेचते हैं। यह सोसाइटी आर्थिक रूप से कमजोर बुनकरों को ऋण भी..... अरे मम्मी! इसमें तो यज्ञ की सारी

बातें आ गई! परस्पर सहयोग भी है, एक दूसरे का पोषण भी है और अपने अहंकार का त्याग भी है। बस अंतिम बिंदु पर कुछ गडबड है।'

मां- 'कहती चलो।''

मैं- 'युधिष्ठिर के यज्ञ में तो यज्ञकर्ता ने सबको संतुष्ट करने के बाद स्वयं प्रसाद ग्रहण किया था पर यहां तो सोसाइटी के संचालक सबसे पहले अपनी जेब भरने के चक्कर में रहते हैं।'

मां- 'बस बस, यही बात मैं समझाना चाहती थी। यदि ये लोग यह चक्कर छोड़ सोसाइटी का काम करने लगें, अपने व्यक्तिगत स्वार्थ का त्याग कर सबके पोषण का लक्ष्य रखें, कपास उगाने वाले से ले कर खरीदार तक सबके हित की बात की बात सोचें तो सोसाइटी का संचालन ही यज्ञ बन जाएगा। इसमें सबका कल्याण होगा। संचालक भी घाटे में नहीं रहेंगे। उन्हें धन के अलावा यश, मानसिक शांति, आत्मसंतोष आदि बहुत-बहुत कुछ मिलेगा जिनकी उन्हें चाह तो है पर इसके लिए वे अर्थिक स्वार्थ का जरा भी त्याग करने को तैयार नहीं। बस मंदिर में जाकर कहेंगे, भगवान हमें शांति दो। बिना कुछ करे इस दुनिया में छोटी सी चीज नहीं मिलती तो शांति कैसे मिल जाएगी? इसीलिए तो मैं बार बार कहती हूं, जीना सीखो। जीवन में क्या क्या हमें चाहिए, किसका कितना महत्व है, उसके लिए क्या क्या हमें करना है, यह सोच कर जीवन की रूपरेखा बनाओ।'

मैं- 'मां, मुझे तो लगता है कि जीवन में सबसे अधिक जरूरत मानसिक शांति की ही है और आजकल कमी भी इसी की ही सबसे अधिक हो गई है। जिसे देखो टेंशन और डिप्रेशन का शिकार है।'

मां- 'हां, सबसे कीमती वस्तु शांति है पर सब लोग कितनी छोटी छोटी बातों पर इसे दांव पर लगा देते हैं। इसका उपयोग लोग इस प्रकार करते हैं जैसे इसकी कोई कीमत नहीं। कहां से मिलेगी यह बहुमूल्य वस्तु उन्हें?'

मैं- 'मां, तुम्हारी बातों से जैसे मेरी बुद्धि पर पडे पर्दे एक के बाद एक कर हटते जा रहे हैं। निस्वार्थ भाव से जीने में इतना बड़ा स्वार्थ है यह मैंने कभी सोचा ही नहीं था। यज्ञ भावना से सामाजिक कार्य करने चाहिए यह मैंने समझ लिया। यह भी मैंने समझ लिया कि इसमें पूर्ण समाज का भी कल्याण है और अपना भी। किन्तु.....किन्तु हमारे उस प्रश्न का क्या हुआ जिसके संदर्भ में हमने बात आरम्भ की थी। ये प्राकृतिक प्रकोप.....

मां- 'हां, अब मैं उसी बात पर आती हूं। प्राकृतिक प्रकोप की बात समझने से पहले कुछ और बातें भी समझ लो। तुम तो अपने को बड़ा सिद्धान्तवादी मानती हो न, जरा शांति से अपने

जीवन का निरीक्षण करो। क्या तुम केवल उतना ही भोग रही हो जितना तुमने अपने पुरुषार्थ से उपार्जन किया है?'

मैं-'बिलकुल। दूसरे का एक भी पैसा किसी भी रूप में लेना मैं अनुचित समझती हूं। ईमानदारी और मेहनत से जो भी कमाई होती है उसमें रूखी सूखी खाकर मैं संतुष्ट हूं। न मुझे किसी से लेना है न देना।'

मां- 'देखो, अपनी ईमानदारी, मेहनत और सादगी के अहंकार में फूलो मत। जरा लेने देने वाली बात फिर से सोच समझ लो।'

मैं- 'इसमें सोचने की क्या बात है? इतने बडे समाज में कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि मैंने उससे कभी कुछ मांगा है। मैं.....'

मां- 'रुको, रुको! सोच कर कहो। क्या बिना मांगे बहुत सी सुविधाएं तुम्हें अपने आप नहीं मिल रही? सोचो..... गंभीरता से सोचो।'

मैय्या ने झकझोर दिया मुझे। मैं मानो नींद से जागी। अरे! मैंने तो कभी सोचा ही नहीं था। ये सड़कें मैंने नहीं बनाई, मेरा विद्यालय मैंने नहीं बनाया, कुछ दिन पहले बीमार होने पर अस्पताल गई थी, वह मैंने नहीं बनाया। यह ठीक है कि मैंने सबके लिए पैसे दिए हैं पर क्या ये पैसे मुझे पढा सकते थे? क्या पैसों से मेरा रोग ठीक हो सकता था? यदि समाज के अन्य व्यक्तियों ने धन और पुरुषार्थ का योगदान नहीं दिया होता तो क्या मैं उस तरह जी सकती थी जिस तरह आज जी रही हूं? समाज का कितना बड़ा ऋण है मुझ पर जिसके लिए मुझे कभी कोई फार्म तक नहीं भरना पडा। इतनी सरलता से ये सुविधाएं मुझे मिली कि मैं समझ भी नहीं पाई कि समाज ने मेरे लिए कुछ किया भी है। 'न लेना न देना' वाली बात में समाई कृतघ्नता आत्म ग्लानि में बदल कर आंसुओं के रूप में बह रही थी।

मैं- 'मां..... ओ मैय्या। आपने आंखें खोल दी मेरी। मैं बड़ी कृतघ्न हूं, बड़ी दुराचारिणी हूं।'

मां- 'देखो, अपने दुराचरण की बात सोच कर हीन भावना मत लाओ। यदि तुम कन्हैय्या की बात समझ कर सही रास्ते पर चलने का निर्णय ले लेती हो तो विश्वास करो, वे तुम्हारा पतन नहीं होने देंगे। तुम्हें शाश्वत शांति अवश्य मिलेगी, यह उनका प्रण है। पर जैसे तुमने समाज के प्रति अपनी भूमिका समझी उसी प्रकार सृष्टि के प्रति समाज की भूमिका भी समझ लो।'

मैं- 'बताओ मां, मेरी सम्पूर्ण चेतना केन्द्रित है तुमपर।'

मां- 'ध्यान से सुनना। इस सृष्टि में कोई भी पूर्ण रूप से, आत्म निर्भर नहीं है। सभी किसी से कुछ लेते हैं और किसी को कुछ देते हैं। यदि कुछ केवल पोषण ही करते रहें और कुछ

केवल शोषण ही करते रहें तो यह अनन्त सृष्टि भी अनन्त काल तक नहीं चल सकती। अत: सृष्टि के सृजन के साथ ही परस्पर पोषण का नियम भी भगवान ने बना दिया था।'

मैं- 'मां, कहीं आपका संकेत हमारे विज्ञान की पुस्तकों में पढाए जाने वाले फूड चेन, आक्सीजन चक्र, जल चक्र इत्यादि की ओर तो नहीं जिसके कारण प्रकृति में संतुलन बना रहता है।'

मां- 'हां, मैं वही बताना चाहती थी। खुशी की बात है कि तुम्हारी बुद्धि अति तीक्ष्ण है। किंतु इसे सूक्ष्म भी बनाओ। जिस तीक्ष्णता के साथ बाहरी संसार का आकलन कर लेती हो उसी सूक्ष्मता के साथ अपने अन्त:करण का निरीक्षण भी करो।'

मैं- 'मां, अन्तर्जगत की यात्रा तो बडी कठिन है। आंखें बंद भी कर लेती हूं तो भी बाहर की ही चीजें दिखाई पड़ती हैं।'

मां- 'घबराओ नहीं। मेरा हाथ पकड कर चलो। मुझे अपने निकट समझो। उधेड़ो अपने चित्त पर पड़ी परतों को। क्या क्या भरा है अंदर देखो.....समझो.....

मैं- 'मां! यहां तो स्वार्थ के कचरे और अहंकार की दुर्गन्ध के सिवा मुझे तो कुछ नहीं मिल रहा। बाहर देख रही थी तो लग रहा था सब एक दूसरे का पोषण कर रहे है। मेघ समुद्र से जल खींचता है तो वृष्टि भी करता है। बीज पृथ्वी से रस खींचता है तो असंख्य फल फूल भी देता है। लेकिन मेरे भीतर तो शोषण ही है मां, सिर्फ शोषण। हम मानव अपने को सृष्टि का सिरमौर समझते हैं और प्रकृति से केवल लेते ही लेते हैं, देने की बात तो सोचते ही नहीं। हम तो जीनियस उसे ही मानते है जो प्रकृति का अधिक से अधिक उपयोग कर पाने में महारत हासिल कर सके। हमने तो समझ रखा है कि सारी सृष्टि केवल हमारे लिए बनी है। लानत है हमारे विवेक पर। एक ओर घोर स्वार्थी बन कर जीना दूसरी ओर अपनी बुद्धि विवेक पर अहंकार करना! हमें तो कठोर दण्ड मिलना चाहिए। भगवान हमें सजा क्यों नहीं देते?'

मां- तुम उत्तेजित हो कर आई थी तब कह रही थी कि कन्हैय्या क्यों सजा देते हैं, और अब कह रही हो कि क्यों सजा नहीं देते। कन्हैय्या तो तब भी कह रहे थे कि मैं कुछ नहीं करता और अब भी कहेंगे कि मैं कुछ नहीं करता।'

मैं- 'तो कैसे होता है सब कुछ? मैं तो कुछ समझ नहीं पा रही।'

मां- 'समझने के लिए सूर्य, चन्द्र, जल आदि प्राकृतिक शक्तियों को तुम देवता मान लो और अपने को प्रजा। भगवान की सृष्टि का नियम यह है कि देवता प्रजा को पुष्ट करें और प्रजा देवता को। दोनों परस्पर एक दूसरे को पुष्ट करते हुए कल्याण को प्राप्त करेंगे। यह उनका आदेश है इन देवताओं को कि यदि मानव यज्ञ भावना रखें तो वे उन्हें अभीष्ट फल अवश्य दें। वे बाध्य

है देने को। किंतु हम लोगों को परस्पर सहयोग, एक दूसरे के हित की भावना, अपने अहंकार का त्याग और सब के पोषण की भावना रखनी होगी। और याद रखो इस 'सब' में प्रकृति भी शामिल है। देवताओं के नाम की आहुतियां तो उनके प्रति कृतज्ञता और प्रतिदान की भावना की प्रतीक होती थी। अब हम लोग वैसे प्रतीकात्मक यज्ञ तो नहीं करते, पर यज्ञ भावना तो रखें। वनों का उपयोग करते हैं तो उनकी वृद्धि के लिए भी यथाशक्ति योगदान करें। पशुओं का भी लाभ उठाते हैं तो यह मानें कि उन्हें भी हमारी सेवा और प्रेम चाहिए।'

मैं तन्मय हो कर सुन रही थी।

मां- 'सृष्टि के इस महायज्ञ में सब अपना योगदान दें, सब इस सुनहरे नियम का पालन करें कि जितना लेते है उससे अधिक देने का प्रयत्न करना है तो सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति होगी। न किसी को प्राकृतिक प्रकोपों का शिकार होना पड़ेगा न सामाजिक विषमता का। क्योंकि कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे के शोषण पर अमीर नहीं होगा। यज्ञ प्रसाद में सबकी भागीदारी होगी।'

मैं- 'मैं समझ गई। हम लोग तो राजनैतिक समाजवाद की बातें करते रहते हैं पर सच्चा समाजवाद तो भगवान कृष्ण की बताई यज्ञ भावना से ही संभव है। मां मेरा शत शत नमन कन्हैय्या को। सचमुच, उनके प्रेम का अन्त नहीं और न ही हमारे स्वार्थ का।'

कभी न कभी मैय्या के कन्हैय्या मेरे भी होंगे न? मां के प्यार का विश्वास है मुझे।

*****